ओ३म्
12th September 2014

आर्य जीवन
ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प
హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

'आर्य समाज क्या है ?

—मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

इस लेख में हम कुछ प्रश्नों पर अति संक्षेप में विचार करना चाहते हैं जो आर्य समाज के अस्तित्व से जुड़े हैं। यह प्रश्न हमें अपने एक विद्वान मित्र से इमेल पर प्राप्त हुए हैं। पहला प्रश्न है कि आर्य समाज हवन को मानता है और आर्य समाजी हवन करते भी हैं परन्तु आर्य समाज हवन नहीं है। हमें लगता है कि हम यह नहीं कह सकते कि आर्य समाज हवन नहीं है। यदि हम हवन व यज्ञ को आर्य समाज से पष्थक मान लें और आर्य समाजी कहलाने वाले गष्हस्थी हवन न करें तो क्या आर्य समाज, आर्य समाज रह सकेगा। हमें लगता है कि आर्य समाज के अस्तित्व के लिए आर्य समाज के प्रत्येक अनुयायी को दैनिक हवन के साथ ब्रह्मयज्ञ—सन्ध्या, पितष्यज्ञ, अतिथि यज्ञ व बलिवैश्व देव यज्ञ का करना आवश्यक है। इसका प्रमुख कारण आर्य समाज वेद विहित कर्मों को करना धर्म मानता है और वेद विरूद्ध कर्मों के आचरण को अधर्म या पाप मानता है। यदि आर्य समाज का अनुयायी यज्ञ नहीं करेगा तो वह वेद विरूद्ध जीवन होगा जिससे वह अधर्मी या पापी कहलायेगा। यदि आर्य समाज का अनुयायी यज्ञ नहीं करेगा तो पंच महायज्ञ, जो आर्य व आर्य समाजी के लिए अनिवार्य हैं, उनके न करने से वह आर्य समाजी न होकर नाम या कथन मात्र का ही आर्य समाजी बचेगा। शरीर से जिस प्रकार से आत्मा के निकल जाने पर शरीर रहता है, उसी प्रकार की कुछ—कुछ स्थिति आर्य कहलाने वाले व्यक्ति की होगी। श्री राम, श्री कष्ण, महर्षि दयानन्द, चाणक्य, सभी आर्य समाजी व आर्य समाज के अनुयायी यज्ञ करते आ रहे हैं और इसमें सबकी आस्था है। परन्तु यहां यह भी कहना उचित होगा कि यज्ञों में पाखण्ड, अन्धविश्वास, शास्त्र विरूद्ध कर्मकाण्ड कदापि नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार से प्रातः काल से उठकर रात्रि शयन तक हम अपने नाना नित्य कर्म करते हैं उसी प्रकार से अग्निहोत्र भी एक दैनिक नित्य कर्म है और उसे महर्षि दयानन्द की संस्कार विधि व पंच महायज्ञ विधि के समन्वयपूर्वक करना उचित है। आजकल हमारे वेदाचार्यों द्वारा जो वेद पारायण यज्ञ किये जाते हैं, यह आज की परिस्थिति में उचित, करणीय, आवश्यक, शास्त्रीय और वेदसम्मत हैं या नहीं, इस पर बहस होनी चाहिये। यदि यह उचित हों और इनसे किसी प्रकार की सिद्धान्त हानि नहीं होती, तो इन्हें किया जा सकता है अन्यथा जो उचित हो वह किया जाना चाहिये। इस प्रकार से यह विषय कुछ—कुछ विवादित सा हो गया लगता है। हम समझते कि विगत दिनों में पं. युधिष्ठिर मीमांसक, डा. रामनाथ वेदालंकार व स्वामी मुनीश्वरानन्द जी आदि वेद एवं यज्ञों के सुपरिचित व विख्यात विद्वान हुए हैं। इनमें से किसी ने भी वेद पारायण यज्ञों का विरोध नहीं किया। इससे यह लगता है कि वेद पारायण यज्ञ करने से कोई सिद्धान्त हानि नहीं होती, अतः इन्हें किया जा सकता है। यह बात अन्य हैं कि न तो इनका विधान महर्षि दयानन्द ने कहीं किया और न ही यज्ञ विषयक प्राचीन मीमांसा आदि दर्शन ग्रन्थों में इनका कहीं विधान है। हम चाहतें हैं कि वेद पारायण यज्ञ के समर्थक विद्वान अपने पक्ष के जो भी प्रमाण हैं वह आर्य समाज के सुधी पाठकों के सामने प्रस्तुत करें जिससे यदि अज्ञानता व अन्य कारण से कोई यज्ञ का विरोध करता है, उसका समाधान हो सके।

An email dated 6.8.2014 from a friend

I simply want that we concentrate on 10 principles of Arya samaj also which form the identity of Arya samaj.
1 Arya samaj has havan but havan is not Arya samaj
2 Arya samaj has yoga but yoga is not Arya samaj
3 Arya samaj has darshan but darshan is not Arya samaj
4 Arya samaj has Vedas but vedas are not Arya samaj. That way entire hindu community says that they accept vedas.

दूसरा प्रश्न जिसमें इस लेख में विचार करना चाहते हैं वह है कि क्या यौगिक जीवन व्यतीत करना भी आर्य समाज है व आर्यों के लिए आवश्यक है? यदि हम योग को स्वीकार न करें तो क्या हम सही अर्थों में आर्य समाजी हो सकते हैं? इसका उत्तर भी हमें यह लगता है कि योग व यौगिक जीवन में आस्था, विश्वास व उसका अभ्यास या आचरण एक आर्य व आर्य समाजी को अवश्य करना चाहिये। योग दर्शन महर्षि पतंजलि की रचना है जिसका आधार ईश्वरीय ज्ञान वेद हैं। "नास्तिकों वेद निन्दकः" के अनुसार वेदों की आज्ञा को न मानना या उसके विपरीत आचरण करना ही वेदों की निन्दा है। यदि कोई आर्य वेद निन्दा का दोषी पाया जाये तो वह किसी भी प्रकार से आर्य समाजी कहलाने का अधिकारी नहीं रहता। महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के तीसरे नियम में वेदों को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक कहकर व उसको स्वयं पढ़ने व दूसरों को पढ़ाने तथा स्वयं सुनने व दूसरों

'सच्ची आध्यात्मिकता'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

आजकल आध्यात्मिकता या spirituality शब्द का काफी प्रयोग किया जाता है। आध्यात्मिकता क्या है, इस पर यदि किसी से प्रश्न किया जाये तो हमें लगता है कि सबके उत्तर अलग–अलग अर्थात् एक दूसरे के परूक न होकर परस्पर विरूद्ध भी हो सकते हैं। अतः सच्ची आध्यात्मिकता पर निष्पक्ष रूपसे विचार करना प्रासांगिक एवं आवश्यक है। हम अनुभव करते हैं कि आत्म तत्व का अध्ययन, विवेचन व निर्धारण ही आध्यात्म का उद्देश्य एवं इस प्रकार के अध्ययन से जो परिणाम सामने आते हैं वह सत्य ज्ञान ही अध्यात्म या आध्यात्मिकता है। जब हम अध्यात्म का अध्ययन आरम्भ करते हैं तो हमें विदित होता है कि यह सारा संसार चेतन व अचेतन दो तत्वों में बंटा हुआ है। अचेतन तत्व के लिए जड़ व निर्जीव शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। चेतन तत्व को आत्म तत्व के नाम से भी जाना जाता है। यदि हम एकदेशी चेतन तत्व जीव पर विचार करें तो हम देखते हैं कि हमारे अनेक शब्द कहीं न कहीं व किसी न किसी रूप इससे जुड़े हैं। कुछ शब्द हमारे ध्यान में आते हैं वह हैं – जीव, आत्मा, जीवात्मा, जैविक, जन्मा, अजन्मा, जीव–जन्तु, ज्ञान व ज्ञानी, जिज्ञासा। जीवात्मा के अतिरिक्त एक अन्य चेतन तत्व जो सर्वव्यापक, एकरस, निरवयव व सर्वज्ञ है, वह परमात्मा है। हम अपनी आंखों से ब्रह्माण्ड को देखते हैं जिसमें सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, नक्षत्र, अग्नि, वायु, जल, आकाश, वन–उपवन, पर्वत–मैदान आदि हैं। सूर्य अपनी धूरी पर घूमकर सौर्य मण्डल के अन्य सभी ग्रहों व उपग्रहों को गति प्रदान कर रहा है। पृथिवी अपनी धूरी पर घूमने के साथ सूर्य की परिक्रमा कर रही है और चन्द्र अपनी धूरी पर घूमने के साथ पृथिवी की परिक्रमा कर रहा है। अमावस्या की रात्रि में आकाश में नक्षत्र व तारे आदि जगमगाते दिखते हैं तो यह दृश्य देखकर मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह सब कैसे अस्तित्व में आये हैं? दो ही उत्तर हैं, प्रथम कि यह स्वमेव बना और दूसरा कि एक सत्य, चेतन, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ सत्ता के द्वारा बनाया गया है। स्वमेव बना है इसका हमारी बुद्धि खण्डन कर बताती है कि संसार में अनादि व नित्य तीन पदार्थों – ईश्वर, जीव व प्रकृति के अतिरिक्त कुछ भी स्वमेव नहीं बनता। प्रत्येक सत्तावान निर्मित वस्तु के तीन कारण होते हैं जिनमें प्रथम निमित्त कारण, दूसरा उपादान कारण और तीसरा साधारण कारण होता है। निमित्त कारण चेतन होता है। हम यह लेख लिख रहे हैं तो हम इस लेख के निमित्त कारण हैं। उसका उपादान कारण हमारा कम्प्यूटर, हमारा हिन्दी–अंग्रेजी का टंकण ज्ञान आदि है। साधारण कारणों में हमारी मेज, कुर्सी, विद्युत आदि को ले सकते हैं।

इसी प्रकार से इस ब्रह्माण्ड के परिप्रेक्ष्य में जब हम निमित्त कारण पर विचार करते हैं तो सबसे प्रबल विचार व तर्क यह सामने आता है कि इस जगत् का निमित्त कारण सृष्टिकर्ता सर्वशक्तिमान ईश्वर है जिसमें पूर्व लिखित गुण विद्यमान हैं। महर्षि दयानन्द ने चारों वेदों से सृष्टिकर्ता ईश्वर के कुछ विशेष गुणों को संग्रहित कर उन्हें आर्य समाज के दूसरे नियम में स्थान दिया है। इसी प्रकार से उन्होंने ईश्वर के विषय में स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश तथा आर्योद्देश्यरत्माला में भी ईश्वर के कुछ प्रमुख गुणों पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। हम यहां तीनों को प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नही कर पा रहे हैं। प्रथम आर्य समाज का दूसरा नियम प्रस्तुत है। यह है–''ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र व सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।'' इस नियम में ईश्वर के 23 गुणों वा विशेषणों का वर्णन है वह यथार्थ व सत्य है क्योंकि इनका सृष्टि में प्रत्यक्ष हो रहा है। कोई वैज्ञानिक भी सृष्टि रचना में इन गुणों की सत्ता के होने से इनकार नहीं कर सकता अर्थात् यह नियम ज्ञान व विज्ञान सम्मत है। संसार में प्रचलित सभी मत–मतान्तरों की इन गुणों के विपरीत ईश्वर सम्बन्धी सभी मान्यतायें पूर्णतः असत्य व मिथ्या है। यह बात हम ज्ञान–विज्ञान की पोषक अपनी बुद्धि के आधार पर विचार व चिन्तन के आधार पर कह रहे हैं और ऐसा ही महर्षि दयानन्द व हमारे सभी ऋषि–मुनियों ने किया व माना है। प्रत्येक पाठक को अपनी अन्ध श्रद्धा व विश्वास को कुछ देर के लिए पृथक रखकर इस नियम पर विचार करना चाहिये। पूरा सत्यार्थ प्रकाश एक दो व तीन बार पढ़कर आप इस ब्रह्माण्ड के अधिकांश रहस्यों से परिचित हो सकते हैं। यदि किसी को इस नियम का ज्ञान नहीं है या इस पर शंका है तो इसका कारण अज्ञानता, अन्ध श्रद्धा व स्वाध्याय की अप्रवृत्ति है जो सत्य के ज्ञान व निर्धारण में बाधक है।

अब हम सत्यार्थ प्रकाश के 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' प्रकरण से ईश्वर विषयक महर्षि दयानन्द के विचारों को प्रस्तुत करते हैं–''ईश्वर कि जिसको ब्रह्म, परमात्मादि नामों से कहते हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव, पवित्र हैं जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी,

सब सष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानसुार सत्य न्याय से फलप्रदाता आदि लक्षणयुक्त परमेश्वर है, उसी को मानता हूं।'' महर्षि दयानन्द के लघु ग्रन्थों में एक ग्रन्थ आर्योद्देश्यरत्नमाला है जिसमें उन्होंने 100 विषय लिख कर उन पर सारगर्भित रूप से प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थ में पहला विषय ईश्वर ही को लिया गया है और इस पर प्रकाश डालते हुए वह लिखते हैं – ''जिसके गुण–कर्म–स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो एक, अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त, सत्य गुणवाला है, और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप–पुण्य के फल ठीक–ठीक पहुंचाना है, उसी को ईश्वर कहते हैं।'' वेदों के चुने हुए मन्त्रों की आध्यात्मिक व्याख्या महर्षि दयानन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ आर्याभिविनय में की है। यह ग्रन्थ भी आध्यात्मिक रूचि बनाने, बढ़ाने व आध्यात्मिक लाभ के लिए उपयोगी है। इस ग्रन्थ में ईश्वर से सार्थक प्रार्थनायें की गई हैं जिसको एक बार पढ़ने पर बार–बार पढ़ने का मन होता है। अध्यात्म रस व आनन्द के पिपासुओं को समय समय पर इसका रसपान अवश्य करना चाहिये, इससे वह सुख प्राप्त होता है जो धन आदि की प्राप्ति से किसी को कभी नहीं हुआ है। यहां हम एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख भी करना चाहते हैं जिसे महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के प्रथम नियम में प्रस्तुत किया है। यह तथ्य है कि ''सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।'' इसका सरल अर्थ है कि सब सब सत्य विद्याओं तथा सष्टि के समस्त पदार्थों का आदि मूल origin and root ईश्वर है। संसार के सभी वैज्ञानिकों के लिए सिद्धान्त को जानना और मानना परम कल्याणकारी हो सकता है।

यह तो ईश्वर के स्वरूप व उसके निर्धारण पर विचार प्रस्तुत किये हैं। अब हम कौन हैं और क्या हैं? यह संसार का सबसे बड़ा और मौलिक प्रश्न है जिसका उत्तर केवल वेदों से ही मिलता है। हम सब जानते हैं कि हम एक चेतन सत्ता हैं जिसका प्रमाण हमें सुख व दुःख की अनुभूति व इनका ज्ञान होना है। निर्जीव व जड़ पदार्थों को सुख व दुख का ज्ञान नहीं होता है। चेतन तत्व या पदार्थ उसे कहते हैं जिसका पहला गुण ज्ञान होता है और दूसरा उस ज्ञान के अनुसार कर्म, क्रिया या गति करना। अतः हम इन गुणों के कारण जीवात्मा, जीव या चेतन तत्व हैं। विचार करने पर हम यह भी पाते हैं कि हम एकदेशी (अत्यन्त सीमित परिवेश वाले) हैं, सर्वव्यापक नहीं हैं। हम सुख को पसन्द करते हैं दुःख को नहीं। हम अल्पज्ञ अर्थात् सीमित ज्ञान वाले हैं, सर्वज्ञ या सब कुछ जानने वाले नहीं हैं। हमारी शक्ति सीमित है असीमित नहीं अथवा हम अपने आप को सर्वशक्तिमान नहीं कह सकते। हम जन्म–मरण धर्मा हैं यह भी निर्विवाद सत्य है। हमें जन्म लेने, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनि में से किसी एक भी प्राप्त करने की छूट नहीं है, यहां हम विवश हैं। यहां तक कि हम देश, काल व अपने माता–पिता भी तय नहीं कर सकते। यह सब ईश्वर के आधीन है। ईश्वर इस मायने में स्वाधीन और हम पराधीन हैं। ईश्वर यद्यपि स्वाधीन है परन्तु वह भी अनुशासन व नियमों में बंधा हुआ है। वह स्वेच्छाचारी नहीं है। जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है। अच्छा कर्म पुण्य कहलाता है और उससे सुख मिलता है, बुरा कर्म पाप कहलाता है और उससे हमें दुःख मिलता है। हम अल्पज्ञ होने के कारण राग, ईर्ष्या, द्वेष, सुख, दुःख, निमेष–उन्मेष, इन्द्रिय अन्तर विकारों से आबद्ध है। इन्द्रिय अन्तर्विकारों में राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ व मोह आदि दुगुर्ण आते हैं जिनसे हमे आध्यात्मिक व सांसारिक जीवन में हानि होती है। विचार करने पर यह भी ज्ञान होता है कि हम अनादि, नित्य, अजन्मा व अत्यन्त सूक्ष्म परिमाण वाले हैं अर्थात् हमारी कभी उत्पत्ति नहीं हुई, हम कभी मरेगें या नष्ट नहीं होगें और हमारा अस्तित्व सदा बना रहेगा। यह भी एक तथ्य है कि हमें ईश्वर ने नहीं बनाया है और न ही ईश्वर को किसी ने बनाया है। इन दोनों व प्रकृति का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है अर्थात् तीनों 'नित्य' है। अध्यात्म का अध्ययन कर हमें विवेक की प्राप्ति होती है जिससे हम दुगुर्णों से बचते हैं और आत्मिक उन्नति करते हैं। यह कुछ हमने जीवात्मा अर्थात 'मैं कौन हूं और क्या हूं?' प्रश्न पर विचार कर जाना है। ऐसा ही ज्ञान हमें वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, मनुस्मृति, गीता, रामायण व महाभारत आदि में मिलता है।

ईश्वर, जीवात्मा व प्रकषति को संक्षेप में जान लेने के बाद बाद अब हमें अपने जीवन के उद्देश्य के बारे में जानना है। हम अधिक विस्तार में न जाकर संक्षेप में कहना चाहते हैं कि भोग व अपवर्ग ही जीवन के उद्देश्य हैं। भोग में सुख व दुःख आते हैं और अपवर्ग में दुःखों की सर्वथा निवषत्ति अर्थात् जन्म व मरण के चक्र से अवकाश के साथ 31 नील 10 अरब 40 खरब वर्षों के लिए पूर्ण आनन्द व सुख की अवस्था की प्राप्ति होती है। मोक्ष अवस्था के तर्क संगत व प्रमाणों से युक्त विस्तषष्ट ज्ञान के लिए सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ के नवम् समुल्लास को पढ़ना चाहिये जो अत्यल्प मूल्य पर देश भर में वा आर्य समाजों से प्राप्त किया जा सकता है। दुःखों से सर्वथा रहित मोक्ष की अवस्था की प्राप्ति के लिए क्या साधन व उपाय करने हैं, अब उस पर विचार करते हैं।

जीवन का एक उद्देश्य भोग व दूसरा अपवर्ग है। भोग के अन्तर्गत हमें अपने प्रारब्ध अर्थात् पूर्व जन्म के पुण्य व पाप कर्मों के फलों को भोगना है। इसके लिए हमें जीवन में आने वाले दुःख को धैर्य व वीरता के साथ सहन करना

है। हमारा यह प्रयास होना चाहिये कि हम सुख में उत्साहित न होकर उसमें समभाव बना कर रखें अर्थात् न सुखी हों और न दुःखी। कर्मों को करते हुए हमें निष्काम या आसक्ति रहित कर्म करने होते हैं। हमें व्यक्ति, सामाजिक कार्य व कर्म तो करने हैं परन्तु फल की इच्छा से रहित होकर करने हैं। ऐसा करने से कर्मों में लिप्त न होने के कारण उसका फल नहीं मिलेगा और वह हमारे कर्मों की पूंजी बन जायेगा जो हमारे अपवर्ग वा मोक्ष में सहायक होगी। वेदों एवं वैदिक साहित्य के अनुसार हमें सामान्य कर्मों के साथ पांच नित्य कर्म करने हैं । उनमें प्रथम ब्रह्म यज्ञ अथवा सन्ध्या कर्म है जो प्रातः व सायं सन्ध्या वेला में किया जाता है। इसमें ईश्वर के गुणों व उपकारों का ध्यान करना होता है। इसकी विधि महर्षि दयानन्द ने ''ब्रह्म यज्ञ या सन्ध्या'' शीर्षक से लिखी है जो पंचमहायज्ञ विधि पुस्तक का एक भाग है। दूसरा नित्यकर्म दैनिक यज्ञ, अग्निहोत्र या देव यज्ञ कहलाता है जिसे भी प्रातः व सायं दोनो समय किया जाता है। इसमें यज्ञ कुण्ड में गोघृत व साकल्य की मन्त्रोच्चार पूर्वक आहुतियां देने का विधान है। इससे वायु मण्डल की शुद्धि के साथ वर्षा जल की भी शुद्धि होकर हमारे कृषि उत्पादों में गुणात्मक परिवर्तन आता है और अनेक दृष्ट व अदृष्ट आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं। तीसरा यज्ञ पितृ यज्ञ कहलाता है जिसमें माता–पिता–आचार्य–परिवार के सभी वृद्धों व समाज के आदरणीय आयु वृद्ध लोगों की सेवा–श्रुशुषा कर उनको सन्तुष्ट रखना होता है। चौथा दैनिक यज्ञ अतिथि यज्ञ है जिसमें हमें विद्वान अतिथियो व लोकोपकारी संन्यासियों आदि की सेवा व दान–दक्षिणा आदि से उनका सत्कार करना होता है जिससे अज्ञान व अविद्या के नाश, विद्या व ज्ञान के प्रसार, सेवा–सत्कार व परोपकार आदि अच्छे कार्यो को बढ़ावा मिले। अन्तिम पांचवां यज्ञ बलिवैश्व देव यज्ञ, नृयज्ञ, भूत यज्ञ या प्राणी यज्ञ कहलाता है। इसमें पशु, पक्षियों व कीट–पंतगों आदि जीव–जन्तुओं को भोजन कराना होता है। यह यथा सामर्थ्य किया जा सकता है। इन कर्मों को करते हुए अपने जीवन व व्यवहार को पवित्र व राग–द्वेष, काम क्रोध आदि से रहित करना होता है। सन्ध्या करते हुए ईश्वर का ध्यान इस स्थिति तक ले जाया जाता है कि उसमें स्थिरता बने और इसकी परिणति समाधि के रूप में हो। समाधि क्या है – शरीर की सभी इन्द्रियां एक प्रकार से विश्राम अवस्था में रहकर जीवात्मा ईश्वर में मग्न होकर दोनों प्रायः एकाकार हो जाते हैं। समाधि के दो भेद होते है एक सम्प्रज्ञात व दूसरी असम्प्रज्ञात समाधि। एक में अपने स्वरूप का ज्ञान रहता है व दूसरी प्रवर अवस्था में अपना भी ध्यान नहीं रहता। यह अवस्था ऐसी होती है कि ईश्वर व जीवात्मा दोनों परस्पर भिन्न होकर भी जीवात्मा कह उठता है – मैं ब्रह्म में हूं, अहं ब्रह्मास्मि अर्थात् ब्रह्म से मेरी साक्षात् भेंट हुई है। सन्ध्या व ध्यान के विस्तृत अध्ययन के लिए महर्षि पतंजलिं के योग दर्शन का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। योगदर्शन को जानने के लिए अनेक आर्य विद्वानों के भाष्य उपलब्ध हैं।

मुण्डको उपनिषद् (8/40) में समाधि का फल बताते हुए कहा गया है कि ''भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।'' अर्थात् समाधि अवस्था में ईश्वर का साक्षात्कार होने पर हृदय में विद्यमान सब संशयों की गांठे खुल या टूट जाती हैं जिससे सभी सन्देह अर्थात् संशय नष्ट हो जाते हैं। इसके साथ ब्रहमज्ञानी उपासक योगी के सब कर्म भी क्षीण हो जाते हैं। हम समझते हैं कि प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को अपने जीवन में यह अवस्था प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। समाधि का सिद्ध होना हमारे शास्त्रकारों के अनुसार मोक्ष, मुक्ति या सर्व दुःखों से निवृत्ति का द्वार है।

आत्मा के संबंध में हम यह भी कहना चाहते हैं कि गीता के दूसरे अध्याय के 23 वें श्लोक में कहा गया है कि ''नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः।।'' अर्थात् इस शरीर के स्वामी जीवात्मा को शस्त्र काट नहीं सकते। आग जला नहीं सकती। पानी गला नहीं सकता तथा वायु जीवात्मा को सुखा नहीं सकती। ऐसा हमारा आत्मा है अर्थात् हम है। यह हमारा परिचय है। धन के होने न होने से आत्मा को कोई विशेष लाभ या हानि नहीं होती। यदि हमने बहुत धन कमा लिया व आत्म लाभ, आत्म–ज्ञान अथवा आत्म–ईश्वर साक्षात्कार नहीं किया तो समझियें हमने सर्वस्व खो दिया और यदि हमने धन कुछ कम व किंचित भी नहीं कमाया परन्तु हमने अपनी सभी इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया, राग–द्वेष–काम व क्रोध को जीत लिया और ईश्वरोपासना आदि कार्यों को करके समाधि अवस्था को सिद्ध कर लिया तो समझिये कि हमने संसार के बड़े से बड़े धनी से अधिक जीवन को सफल किया है। विचार कीजिए और स्वयं निर्णय कीजिए। सही निर्णय ही जीवन को उसके लक्ष्य तक पहुंचा सकेगा। हम यहां यह भी कहना चाहते हैं कि मोक्ष के जिज्ञासु व साधक को मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम, योगश्वर श्री कृष्ण तथा महर्षि दयानन्द के जीवनों से प्रेरणा लेनी चाहिये। इससे पूर्व की हम लेख को विराम दे हम पाठकों को खाली समय में व नियमित रूप से भी ओ३म् और गायत्री मन्त्र का जप करने का सुझाव देते हैं। जप करते समय इनके अर्थ व इनका भाव मन में उपस्थित रहना चाहिये। जब जितना समय मिले, जप कर लेना चाहिये। इससे मन आध्यात्मिकता के रंग में रंग जाता है। इसके साथ ही यज्ञ व हवन के अतिरिक्त भी ओ३म् विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव आदि 8 मंत्रों का यदा–कदा व खाली समय में अर्थ पूर्वक विचार कर जप कर लिया जाये तो इससे जीवन को आध्यात्मिक बनाने में लाभ मिलता है। इसके साथ ही हम लेख को विराम देते हैं।

यदि हमने साध्य को भुले हैं तो समझिये कि हमारा जीवन बर्बाद हो रहा है–

'क्या हमें अपने साध्य और साधनों का ज्ञान है?'

—मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

साध्य लक्ष्य या उद्‌देश्य को कहते हैं। साधन वह है जिसकी सहायता से साध्य या लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि हमें दिल्ली जाना है तो दिल्ली हमारा साध्य कहलायेगा। दिल्ली जाने के लिए हम पैदल, दो पहिया वाहन, चार या अधिक प्हियों के वाहन यथा कार, बस आदि अथवा रेलगाड़ी का प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए प्रयोजन और साधनों के प्रयोग के लिए आवश्यकता के अनुरूप धन आदि भी होना चाहिये। ऐसी अवस्था में पैदल चलना, गाड़ी की सहायता लेना तथा धन आदि साधन कहलाते हैं। इन साधनों का प्रयोग कर दिल्ली पहुंच जाते हैं और हमें हमारे साध्य वा लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।

यह तो बात हुई साध्य व साधनों की। अब विचार करना है कि हमारे जीवन का असली साध्य क्या है? मनुष्य माता–पिता से जन्म लेकर संसार में आता है। जन्म क्यों होता है? इसका उत्तर हमें ज्ञात करना है। हमारे वेद आदि शास्त्रों व ऋषि–मुनियों ने इस प्रश्न का उत्तर शास्त्रों के अध्ययन, उनके ज्ञान व अपने अनुभवों से दिया हुआ है जिसका हमें मात्र अध्ययन कर चिन्तन करना है। हमारे वेदादि शास्त्र एवं महर्षि दयानन्द सहित ऋषि–मुनियों के ग्रन्थ बताते हैं कि मनुष्य का जन्म पूर्व जन्म में किये हुए अवशिष्ट कर्मों के फलों के भोग के लिए व साध्य को जानने व उसकी प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करने के लिए होता हे। हम मनुष्य जीवन में जो कर्म करते हैं उनमें कुछ ऐसे होते हैं कि जिनका फल हमें साथ–साथ या इसी जन्म में मिल जाता है, यह कियमाण कर्म कहे जाते हैं। कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो हमारे कर्मों के खाते में जमा हो जाते हैं और वह हमारे पुनर्जन्म या मोक्ष आदि में सहायक होते हैं। यह जो कर्म किये जाते हैं इनमें एक तो अपने शरीर की रक्षा के लिए होते हैं जिसमें भोजन, आवास, वस्त्र, स्वयं व अपने परिवार की शिक्षा–दीक्षा, परिवार में रोग आने पर उनकी चिकित्सा, सन्तानों के विवाह, वाहन आदि खरीदने के साथ भावी आपातकालीन स्थिति के लिए कुछ अतिरिक्त संग्रहित धन की व्यवस्था भी करनी होती है जिसे धन के उपार्जन अर्थात् अध्ययन–अध्यापन, सेवा या नौकरी, स्वतन्त्र व्यवसाय, राजनीति, कृषि व अन्य–अन्य कार्यों से प्राप्त किया जाता है। यह सब तो जीवन यापन के लिये किया जाता है। क्या जीवन यापन व सुख–दुःख भोगने के लिए ही हमारा जन्म हुआ है? विचार व विवेचन करने पर ज्ञात होता है कि नहीं यह तो जीवन के महद् उद्‌देश्य के पूरक व आरम्भिक सोपान हैं। जीवन का उद्‌देश्य अथवा साध्य तो इन सब कार्यों से भिन्न है। वह है – सुख व दुःखों की सदा–सदा अर्थात् बहुत लम्बी अवधि तक के लिए पूर्ण निवृत्ति व परमानन्द=सर्वश्रेष्ठ आनन्द की उपलब्धि या प्राप्ति। क्या ऐसा सम्भव है कि हमें सुख व दुःख दोनों ही न हों और परम आनन्द अर्थात् सर्वश्रेष्ठ सुख की उपलब्धि हो जाये। वेद और वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन, विचार व चिन्तन से यह सिद्ध होता है कि यह सम्भव है और इससे पूर्व अनेकानेकं मनुष्य सुख–दुःख जिसका कारण मनुष्य जन्म व मृत्यु होता है, इससे मुक्त होकर परमानन्द प्राप्त कर चुके हैं। आईये, अब इस परमानन्द और इसकी प्राप्ति पर विचार एवं इसकी विधि ा पर विचार करते हैं।

हमने उपर्युक्त संक्षिप्त विचार व चिन्तन में देखा कि हमारे सभी सुख व दुःख हमारे पूर्व जन्म व इस जन्म के अच्छे व बुरे कर्मों के कारण होते हैं। यदि हम कर्मों में आसक्ति अर्थात् फलों की इच्छा का त्याग कर दे, उसी प्रकार जिस प्रकार से बुरे कर्मों के फल भोगने में हमारी प्रवषत्ति किंचित भी नहीं होती, तो क्या होगा? यह होगा कि हम जो अच्छे कर्म करेगें वह इकट्ठे होते रहेगें और अच्छे कर्मों का खाता बढ़ता रहेगा। इससे ऐसी स्थिति आयेगी की जब हमारे अच्छे कर्म 100 प्रतिशत हो जायेगें एवं बुरे व पाप कर्म जिनका फल या कारण दुःख होता है, वह शून्य हो जायेगें या बहुत कम रह जायेगें। यह भी मान लीजिये कि इस अवस्था तक पहुंचने में जीवात्मा ने ईश्वर विचार, चिन्तन, ध्यान व समाधि का भी अधिकाधिक अभ्यास किया है और वह उसे प्राप्त भी हुई है। वह जान गया है कि ध्यान करने का अन्तिम परिणाम समाधि ा होती है और समाधि में इस संसार को बनाने व चलाने वाले तथा जीवात्मा को जन्म व मष्त्यु प्रदान करने वाले परमात्मा वा ईश्वर का निर्भ्रान्त ज्ञान भी उस ध्यान करने वाले व्यक्ति को हो जाता है। जब वह समाधि में होता है तो उसका बाह्य संसार, जगत् या वातावरण से सम्पर्क विछिन्न हो जाता है और ध्यान कर रहा व्यक्ति ईश्वर के स्वरूप को अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष अनुभव करता है व साक्षात् करता है। यहां विचार करने की बात यह है कि हम सांसारिक पदार्थों को आंखों की सहायता से देखते हैं क्योंकि इनका स्वरूप ही परिमित आकार वाला व स्थूल होता है। आकार व आकषति को देखती अर्थात् अनुभव करती मनुष्य की आत्मा ही है। इसी प्रकार से समाधि में भी उस निराकार, ज्ञान स्वरूप सर्वज्ञ प्रकाशस्वरूप परमात्मा को हमारी आत्मा ही साक्षात् अनुभव करती है। जिस प्रकार से भौतिक जगत में हम वस्तुओं को उनके स्थूल व आकार वाले रूपों को देखते हैं इसी प्रकार से ध्यान व समाधि में ईश्वर को उसके सच्चिदानन्द, निराकार, प्रकाशस्वरूप, ज्ञानस्परूप यथार्थ स्वरूप को देखा अर्थात् उसे साक्षात्, निर्भ्रान्त रूप में देखा व अनुभव किया जाता है। इसी को ब्रह्म साक्षात्मकार व आत्म साक्षात्कार कहा जाता है। यह ईश्वर–साक्षात्कार व निर्भ्रान्त अनुभव,

जीवात्मा के सत्कर्मों अर्थात् पुण्यकर्मो का फल होता है। यह अवस्था तभी प्राप्त होती है जीवन में इसके लिए पात्रता आ जाती है व जब ईश्वर जीव पर कृपा करके अपना साक्षात् स्वरूप प्रदर्शित करते हैं। सभी जीवों को इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए ही यह मनुष्य जन्म मिला है इस ब्रह्म साक्षात्कार की स्थिति के प्राप्त हो जाने पर ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूरा होता है। इसी अवस्था को कहा जाता है कि मनुष्य जीवन का "साध्य", लक्ष्य अर्थात् ईश्वर की यथावत् प्राप्ति हुई है। इस अवस्था को प्राप्त होने के बाद मनुष्य जीवन्मुक्त कहा जाता है और कालान्तर में मृत्यु होने पर ईश्वर उस जीवात्मा को मोक्ष अवस्था प्रदान करते हैं। मोक्ष अर्थात् सभी दुःखों से पूर्णतः निवृत्ति की अवस्था। जब जीवात्मा को कुछ जानना होता है व कोई सात्विक इच्छा होती है तो वह ईश्वर के सान्निध्य व साक्षात् सम्बन्ध के होने से पूरी हो जाती है। ऐसे व्यक्ति की मृत्यु होने पर वह अपने यथार्थ स्वरूप=आत्मस्थ स्वरूप में विद्यमान रहते हुए अपने संकल्प शरीर से ईश्वर से युक्त होकर आनन्द की अनुभूति के साथ लोक लोकान्तरों का भ्रमण व विचरण आदि करता है व ईश्वर के कार्यों व सृष्टि को देखता है।

मित्रों, महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की और उसके 10 नियम बनायें हैं। इन नियमों पर जब हम विचार करते हैं तो हमें लगता है पहला व दूसरा नियम तो मनुष्य जीवन के साध्य को ध्यान में रखकर बनाया गया है और शेष आठ नियम उस साध्य की प्राप्ति के साधनों को प्राप्त कराने के लिए एक प्रकार से साधन है। पहले नियम में मनुष्य को ईश्वर के स्वरूप व कृतित्व से परिचय कराते हुए कहा गया है कि "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल परमेश्वर है।" यहां एक बात तो यह कही गई कि मनुष्य से भिन्न एक पृथक ईश्वर की सत्ता है जो सब सत्य विद्याओं का मूल कारण या आदि कारण हैं। उदाहरण के रूप में हम कम्प्यूटर साइंस विद्या को लेते हैं। इस नियम में गौण रूप से यह कहा गया है कि यह जो कम्प्यूटर विज्ञान की विद्या है, यह ईश्वर द्वारा इस संसार को बनाने में ही विद्यमान थी। ईश्वर इसका आदि व मूल कारण है। मनुष्यों, वैज्ञानिकों ने तो बस सृष्टि में उपलब्ध विविध प्रकार के ज्ञान व नियमों की खोज की है, जिसे विज्ञान का नाम दिया गया है और उसका उपयोग वह वैज्ञानिक व अन्य मनुष्यादि लोग कर रहे हैं। यही हाल सभी सत्य विद्याओं का है। ईश्वर है तो सब विद्यायें हैं। ईश्वर न होता तो कोई भी विद्या न होती क्योंकि तब उसके न होने पर यह संसार ही न बनता। हम देश व दुनियां के सच्चे वैज्ञानिकों का श्रद्धापूर्वक हार्दिक धन्यवाद व उन्हें नमन करना चाहते हैं। उनका कार्य भी कुछ–कुछ हमारे ऋषियों की ही तरह आध्यात्मिक न होकर प्रकृति के अध्ययन से जुड़ा है जिसमें कल्पनातीत नियमबद्ध पुरूषार्थ शामिल है। हम सभी मत–मतान्तरों के मठाधीशों, महन्तों व प्रवतर्कों से यह भी कहना चाहते हैं कि वैज्ञानिकों का अनुकरण व अनुसरण करते हुए ईश्वर की बात करते समय वैज्ञानिकों की भांति पूर्ण सत्य की खोज कर ईश्वर का केवल सत्य स्वरूप ही अपने अनुयायियों में प्रस्तुत व प्रचारित करें और अज्ञान व स्वार्थ से ऊपर उठने का प्रयास करें। हमे लगता है कि अधिकांश मत–मतान्तरों में ईश्वर व जीवात्मा के सत्य स्वरूप का ज्ञान आज भी नहीं है इसलिये जो भी उपासना, पूजा व अन्य प्रक्रिया सभी संसार के मनुष्य कर रहे हैं वह मनुष्य जीवन के साध्य वा लक्ष्य में साधक न होकर बाधक लग रही है।

हम आर्य समाज के लोग यूरोप आदि के वैज्ञानिकों के इस लिए भी आभारी है कि उन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान कर कागज व मुद्रण यन्त्रों का निर्माण किया जिससे हम वेदों की रक्षा कर सके। कल्पना कीजिए कि यदि वैज्ञानिकों ने कागज व मुद्रण प्रेस की खोज व निर्माण न किया होता या एक दो शताब्दी हुआ होता, तो महर्षि दयानन्द व आर्य समाज वेदों का संरक्षण व प्रचार प्रसार वर्तमान व पूर्व काल की भांति नहीं कर पाते। यदि महर्षि दयानन्द को वेदों की प्रति उपलब्ध भी हो जाती तो शायद उसे देश–देशान्तर में प्रचारित करना कठिन होता क्योंकि उन्होंने जो सत्यार्थ प्रकाश एवं वेदभाष्य आदि लिख कर सहस्रों प्रतियों में प्रचारित व प्रसारित किए उसके न होने पर प्रचार अत्यन्त सीमित होता। हम कभी–2 सोचते हैं कि आज हमारे पास साहित्य का प्रचुर भण्डार है। हमें लगता है कि प्राचीन काल अर्थात् अब से 500 वर्ष व उससे पूर्व यह सुविधा हमारे देशवासियों को सुलभ नहीं थी। अतः हम सौभाग्यशाली है कि आज सभी वेद अन्य अनेक वैदिक ग्रन्थ हमारे घर पर हैं वह वह हमारी निजी सम्पत्ति हैं। हमारे पास केवल एक विद्वान का ही नहीं अपितु अनेक विद्वानों का भाष्य है। इसका श्रेय महर्षि दयानन्द व उनके अनुयायी वेदभाष्यकारों सहित हमारे यूरोपीय वैज्ञानिकों को भी हैं। इसके लिए महर्षि दयानन्द, वेदों के सच्चे अर्थ करने वाले वेदभाष्यकारों तथा सभी वैज्ञानिकों को भी हमारा नमन है।

आर्य समाज के दूसरे नियम में ईश्वर के सत्य स्वरूप का वर्णन किया गया है जो चारों वेदों के अध्ययन का महर्षि दयानन्द का निचोड़ व सार है। इसकी परीक्षा करने पर इस नियम में कहे गये एक–एक शब्द पूर्ण सत्य अनुभव होते हैं, हमारी आत्मा उसकी साक्षी देती है। इसकी आज तक किसी मत–मतान्तर के विद्वान ने आलोचना नहीं की जिससे इसका शत प्रतिशत सत्य होना सिद्ध है। आईये, आर्य समाज के दूसरे नियम पर दृष्टि डाल लेते हैं– "ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र व सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।" महर्षि दयानन्द ने देश–देशान्तर के सभी लोगों के लिए ईश्वर के सच्चे स्वरूप का संक्षेप में यह वर्णन किया है। वेदाध्ययन कर ईश्वर के बारे में विस्तार से भी जाना जा सकता है। जितना महर्षि दयानन्द ने इस नियम में वर्णन किया है, इतना भी जानकर और उसे जीवन में धारण करने से मनुष्य जीवन का कल्याण हो सकता है व अनेकों का हुआ है। इन्हीं गुणों से साध्य की सफलता के

लिए ईश्वर की उपासना प्रत्येक मनुष्य=स्त्री व पुरुष को करनी चाहिये। इन गुणों पर विचार व चिन्तन करने व ध्यानावस्था में इसमें खो जाने पर कालान्तर में समाधि अवस्था की सम्भावना बनती है। इसके साथ योगदर्शन का अध्ययन कर आध्यात्म विज्ञान व इसके रहस्यों को जाना जा सकता है। महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की कृपा से यह सब ज्ञान पुस्तकों में हिन्दी भाषा में उपलब्ध है जिसे हिन्दी के अक्षरों व शब्दों का ज्ञान रखने वाला अल्प शिक्षित व्यक्ति भी जान व समझ सकता है और अपने जीवन का कल्याण कर सकता है। महर्षि दयानन्द की यह संसार को बहुत बड़ी देन है।

आईये, अब अन्य 8 नियमों की चर्चा करते हैं। यह सब साध्य=ईश्वर प्राप्ति के एक प्रकार से साधन ही हैं। आर्य समाज के तीसरे नियम में कहा गया है कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" यहां साधनों का मार्ग दर्शन करते हुए कहा गया है कि साध्य व साधनों को जानने के लिए वेदों का ज्ञान व वेद की पुस्तकें हैं। उसे पढ़ने से साध्य व साधन दोनों का ज्ञान हो जाता है। चौथा नियम है कि "सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।" यहां महर्षि दयानन्द बता रहे हैं कि साध्य को हम तभी पकड़ सकते हैं जब हम सत्य को ग्रहण करेंगे और असत्य को छोड़ेंगे। यदि हम सत्य को ग्रहण व असत्य को नहीं छोड़ेंगे तो प्रलय काल तक भी साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार से पांचवें नियम में कहा गया है कि "सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिये।" इस नियम में यह कहा गया है कि कर्म करने से पूर्व सत्य व असत्य का विचार कर लेना चाहिये। यदि पता न चले तो स्वाध्याय से या फिर अपने से अधिक विद्वान व बुद्धिमानों से परामर्श कर समाधान कर लेना चाहिये। यदि कोई काम असत्य हो गया तो वह साध्य की प्राप्ति में बाधक होता है। अतः यहां सावधान किया गया है कि कोई भी असत्य काम न हो अपितु सब काम सत्य अर्थात् धर्मानुसार ही करने चाहियें। "ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना", इस छठे नियम में भी साधक को प्रेरणा की गई है कि साध्य की प्राप्ति के लिए वह संसार, देश व समाज के लोगों की शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति करे व कराये। इसमें यह भी शामिल है कि उसे अपनी भी तीनों प्रकार की उन्नति करनी है जो साध्य की प्राप्ति में सहायक एवं आवश्यक है। सातवें नियम में महर्षि दयानन्द आर्य समाज के सदस्यों को उपदेश करते हैं कि "सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये।" इस नियम में निर्दिष्ट तीन बातों का पालन करने से भी साध्य की निकटता होती है और विपरीत आचरण करने से साध्य से दूरी बनती है। आठवें नियम में महर्षि दयानन्द आधुनिक संसार के निर्माण की नींव रखते हुए कहते हैं कि "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।" इस नियम के पालन करने से न केवल हमारा समाज व विश्व ही उन्नत व आधुनिक बनता है साथ हि अध्यात्म में भी तीव्रतम प्रगति की जा सकती है और साध्य शीघ्र प्राप्त व सफल किया जा सकता है। "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" यह आर्य समाज का नवम् नियम है जिसके पालन की आज के युग में सबसे अधिक आवश्यकता है। आज जो सामाजिक व आर्थिक विषमता है उसकी नींव में इस नियम के विरूद्ध व्यवहार का होना है। इस नियम का पालन भी साध्य की प्राप्ति में आवश्यक है और इसके विरूद्ध व्यवहार साध्य की प्राप्ति में बाधक है। अन्तिम दशम् नियम है कि "सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें।" यह नियम सद्कर्मों का प्रेरक और अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की हानि करने का विरोध कर रहा है और ऐसा करके ही हम अपने "साध्य" सर्वव्यापक ईश्वर के समीप हो सकते हैं और उसे प्राप्त कर सकते हैं। अतः आर्य समाज के सभी नियम साध्य व साधनों का वर्णन कर रहे है व उनके प्रेरक हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को आर्य समाज का अनुयायी व प्रचारक बनना चाहिये जिससे वह साध्य को यथाशीघ्र प्राप्त कर सके। हम यहां यह भी कहना चाहते हैं कि आर्य समाज जैसे नियम विश्व में किसी धार्मिक व सामाजिक संस्था के नहीं हैं, राजनीतिक संस्थाओं के होने की आशा करना तो बन्ध्या के पुत्र के समान है।

लेख में हम वैशेषिक दर्शन (अध्याय 1 सूत्र 2) "यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।" का भी उल्लेख करना चाहते हैं। इसमें कहा गया है जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्ध होती है वह धर्म होता है। अभ्युदय का अर्थ सुख व समृद्धि से युक्त सम्मानित जीवन और निःश्रेयस, साध्य = ईश्वर व मोक्ष की प्राप्ति के होने को कहते हैं। जिन साधनों, कार्यों व उपायों से यह दोनों सफल होते हैं उनका नाम धर्म है। यह धर्म ही हमें साध्य को प्राप्त कराता है अर्थात् यह धर्म ही साध्य की सिद्धि व सफलता का साधन है। धर्म केवल वह है जो वेद व वेदानुकुल शास्त्र व ग्रन्थों में उपदिष्ट है। इनके विरूद्ध जो बातें व कार्य हैं वह धर्म की कोटि में नहीं आते अतः वह साध्य प्राप्ति के साधन नहीं हो सकते हैं।

हमने इस लेख में जाना है कि प्रत्येक मनुष्य का साध्य ईश्वर की प्राप्ति व उसका साक्षात्कार है। इसके साधन ईश्वर का ज्ञान, ईश्वर की उपासना, सेवा, परोपकार, यज्ञ, अग्निहोत्र, माता–पिता–आचार्यों–गुरूजनों–सच्चे साधुओं व संन्यासियों आदि की सेवा व वेद का अध्ययन, अध्यापन व वेदाचरण के साथ सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, आर्याभिविनय, संस्कार विधि आदि का अध्ययन भी हैं। यह जान लेने के बाद आवश्यकता है कि साधनों का उपयोग कर साध्य को प्राप्त करने के लिए संकल्पपूर्वक अग्रसर होना। ईश्वर आपके अवश्य सहायक होंगे, आप आरम्भ करें।

–मनमोहन कुमार आर्य

फोनः 09412985121

Date:12-09-2014

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక
ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ
D.No. 4-2-15 మహర్షి దయానంద మార్గము
సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్ - 500 095
phone No. 040 - 24753827, 66758707, Fax: 040-24557946
సంపాదకులు - విఠల్‌రావు ఆర్య ప్రధాన్ సభ

को सुनाने को परम धर्म कहा है। इसमें यह भावना भी सम्मिलित है कि वेदों के अनुसार ही आचरण करना धर्म व वेद के अनुसार आचरण न करना वा विरूद्ध आचरण करना अधर्म है। योग दर्शन के वेद के उपांग होने के कारण इसको जीवन में धारण करना भी वेदाज्ञा का पालन करना व आवश्यक कर्तव्य है। इसी प्रकार से हम सभी दर्शनों की शिक्षाओं पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि दर्शनों की रचना हमारे वेदों के ऋषियों ने की है जो ईश्वर का साक्षातकार किये हुए वेदानुयायी स्थिति–प्रज्ञ महात्मा थे। अतः सभी दर्शनों का अध्ययन करना, उनका संरक्षण करना व उनकी शिक्षाओं को जीवन में अपनाना भी आवश्यक है अन्यथा हम ईश्वर, वेद, ऋषियों की अवज्ञा के दोषी होगें। आर्य समाज के पास वेद हैं परन्तु वेद आर्य समाज नहीं हैं। यदि ऐसा है तो फिर आर्य समाज क्या हैं? यह तो ऐसा ही है कि यह कहा जाये कि मनुष्य के पास शिर, आंख, नाक, कान, मुंह व जिह्वा आदि इन्द्रियां व अंग हैं परन्तु यह सब मनुष्य नहीं है। यदि मनुष्य में से इन सबकों निकाल दिया जाये तो क्या मनुष्य बचेगा?, कदापि नहीं। अतः हवन, योग, दर्शन व वेद सभी मिलकर व इनको धारण व पालन करने से आर्य समाज बनता है और इनका पालन व आचरण करने वाला वैदिक धर्मी या आर्य समाजी होता है।

हम अपने इमेल प्रेषक आदरणीय मित्र की इस बात से सहमत हैं कि हमें आर्य समाज के 10 नियमों पर अपना ध्यान देना चाहिये। यह नियम ही आर्य समाज की पहचान हैं। इसके साथ हम यह भी कहना चाहते हैं कि इसके लिए हमें हवन, योग, दर्शन व वेद को भी साथ रखना पड़ेगा, नही तो हम प्रचार क्या करेगें और करणीय व अकरणीय कर्तव्यों का निर्णय कैसे होगा? वेद आर्य समाज की आत्मा है जिससे पथ्थक होकर आर्य समाज जीवित नहीं रह सकता। वेद के साथ–साथ पंच महायज्ञों में से सन्ध्या, हवन व अन्य तीन यज्ञों के साथ हमें योग, दर्शन व वेद को भी अग्रणीय व उच्च स्थान देना होगा। जब तक ऐसा करेगें आर्य समाज जीवित रहेगा और इन्हें छोड़ने से आर्य समाज लड़खड़ा कर गिर सकता है। हम अनुमान करते हैं कि हमारे इमेल मित्र हमारे विचारों से सहमत तो नहीं होगें परन्तु हमें लगता है कि हमारे विचार भी महर्षि दयानन्द की मान्यताओं व सिद्धान्तों के अनुरूप हैं। हम अनुभव करते हैं कि हमारे मित्र यदि अपने विचारों को विस्तार से व्याख्या के साथ प्रस्तुत करें तो इससे विद्वानों को लाभ होगा।

आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान

१७ सितम्बर २०१४ बुधवार के दिन

पं. नरेंद्र जी स्टेच्यू कोठी के पास

हैदराबाद मुक्ति दिवस

मनाया जाएगा

डॉ. आनंद राज वर्मा द्वारा

हैदराबाद के मुक्ति आंदोलन का इतिहास पर लिखित ग्रंथ

हैदराबाद का मुक्ति संघर्ष

का विमोचन किया जाएगा

शहीदो को समर्पण

सलाम उन शहीदों को, जो खो गए
वतन को जगाकर जो खुद सो गये।
जाते - जाते शहीद हम से ये कह गए,
हम रहें न रहें वतन हमरा आबाद रहे

मुख्यअतिथि : मान्य श्री नायनी नरसिम्हा रड्डी जी
गृहमंत्री तेलंगाणा राज्य

अध्यक्षता : मान्य श्री विट्ठलराव जी आर्य
महा मंत्री सार्वदेशिक सभा - दिल्ली, प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा आं.प्र.

गांधि ज्ञान मंदिर, कोठि, हैदराबाद

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र. हैदराबाद तेलंगाना

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR

संपादकः श्री विट्ठल राव आर्य प्रधान सभा ने सभा की ओर से
आकृति प्रेस चिक्कडपल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया।
प्रकाशकः आर्य प्रतिनिधि सभा आं.प्र.-तेलंगाना सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद तेलंगाना-९५